आख्यान तथा वाचिक परम्परा

- लेखक : DAKSHIN KOSAL TODAY DESK
- तारीख : July 03, 2026

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में वाचिक अभिनय को चार मुख्य अभिनयों में रखा है। आंगिक (शरीर की मुद्राओं से होने वाला अभिनय), वाचिक (संवाद), सात्विक (आन्तरिक भावों का अभिनय) और आहार्य (वेशभूषा और साज-सज्जा) अभिनयों में से किसी एक की प्रधानता रहने और शेष के गौण (कम महत्त्वपूर्ण) रहने पर भी नाट्य प्रयोग सम्भव है। यह भी सम्भव है कि चारों अभिनय समान रूप से प्रयोग में आएं अथवा दो या तीन अभिनय समान रूप से काम में लिए जाएं और शेष गौण रहें।

केवल संवाद अदायगी के माध्यम से भी पूरा नाटक सम्भव है। प्राचीन साहित्य के साक्ष्यों (प्रमाणों) से स्पष्ट होता है कि संवाद प्रधान नाट्य प्रयोग ही हमारी नाटक परम्परा का मूल है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता (रचनाकार) भरतमुनि उस परम्परा के प्रति पूरी तरह सजग हैं जो वाणी (बोलने की कला) को ही सारे व्यवहार की जड़ मानती है। वे वाणी को नाटक का शरीर बताते हुए कहते हैं कि वाणी को निखारने में पूरा प्रयास करना चाहिए। शरीर की मुद्राएं, वेशभूषा और आन्तरिक भाव केवल वाणी के अर्थ को ही प्रकट करते हैं।

भरतमुनि यह भी कहते हैं कि वाणी समस्त साहित्य तथा जीवन के व्यवहार का मूल है। वाणी से श्रेष्ठ कुछ नहीं है और वाणी ही सबका कारण है।

भरतमुनि के समय के आसपास ही पतंजलि ने अपना महाभाष्य लिखा था। इसमें उन्होंने ग्रन्थिक (कथा बांचने वाले) तथा शोभनिक (दृश्य दिखाने वाले) नामक दो प्रकार के नटों (कलाकारों) का उल्लेख किया है। ग्रन्थिक नट ग्रन्थ से आख्यानों (बड़ी कथाओं) और उपाख्यानों (उप-कथाओं) का पाठ करते थे। उनकी प्रस्तुति मुख्य रूप से वाचिक (बोलने पर आधारित) होती थी। वास्तव में ग्रन्थिक उस परम्परा के विकास की ही एक कड़ी हैं जो कथाओं को प्रस्तुत करती है। पतंजलि के विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि शोभनिक नट चित्र दिखा-दिखाकर उनके साथ कथा गायन या नाट्यात्मक प्रस्तुति करते थे।

डी. आर. माकड़ तथा मनमोहन घोष जैसे विद्वानों का मानना है कि नाटक के विकास क्रम में सबसे पहले ऐसे नाटक आए

जिनमें एक ही पात्र (कलाकार) होता था और वह केवल बोलकर अपना अभिनय करता था। रूपक (नाटक) के 10 भेदों में भाण (एकल अभिनय वाला नाटक) इसी प्रकार का रूपक है। इसमें एक ही पात्र आरम्भ से अन्त तक मंच पर रहता है और सारे पात्रों का अभिनय अकेला ही करता है। माकड़ ने नाटकों के विकास क्रम में भाण जैसे नाटकों का आरम्भ सबसे पहले माना है।

दूसरी ओर मनमोहन घोष ने वाचिक परम्परा में भारतीय नाटक का मूल स्वीकार करते हुए इसके विकास की 4 अवस्थाएं मानी हैं। पहली अवस्था इतिहास और पुराणों का कविता के रूप में गायन है। दूसरी अवस्था आम लोगों को कविता समझाने के लिए गद्य (सीधे वाक्यों) में उसकी व्याख्या करना है। तीसरी अवस्था कथा में आने वाले संवादों का एक या दो कुशीलवों (गायन और वादन करने वाले कलाकारों) द्वारा अभिनय के साथ प्रस्तुतीकरण है। चौथी अवस्था इस प्रस्तुति में गीत और नृत्य का समावेश है।

कथा प्रस्तुत करने वाले सूत (पौराणिक कथावाचक) आरम्भ से ही अपनी प्रस्तुति में नाटकीयता लाने का प्रयास करते आ रहे थे। इस तरह वे कहानी को रोचक बनाकर उसे साकार करते थे। भोज ने कथा प्रस्तुत करने वाले ग्रन्थिक के विषय में लिखा है कि कथा बांचने वाले के लिए जब यह कहा जाता है कि वह कंस का वध करवा रहा है, तो आशय (अर्थ) यह होता है कि वह कंस वध की कथा सुना रहा है। ग्रन्थिक कथा पाठ के साथ बोलने के सधे हुए प्रयोग तथा अभिनय कुशलता के माध्यम से दृश्य को इस तरह जीवन्त कर देता है कि सुनने वाले उसके लिए वर्तमान काल का प्रयोग करने लगते हैं।

कथावाचकों द्वारा जो नाटक प्रस्तुत किए जाते थे, उनमें स्वाभाविक रूप से संवादों की प्रधानता रहती होगी। ऐसे नाटकों में सूत्रधार (नाटक का मुख्य संचालक) कथा कहता हुआ आरम्भ से अन्त तक दर्शकों के सामने उपस्थित रहता है। संस्कृत नाटक परम्परा में ऐसे नाटकों का एक प्राचीन उदाहरण हनुमन्नाटक है। हनुमन्नाटक पूरी संस्कृत नाटक परम्परा में एकदम अलग तरह का नाटक है। यह नाटक पूरा का पूरा कविता में है और इसमें मंच पर होने वाली घटनाओं का भी काव्यात्मक विवरण लगातार दिया गया है।

इस प्रकार पूरा नाटक ही कथा गायन की शैली में है। यह नाटक दो संस्करणों (रूपों) में मिलता है। दोनों संस्करणों में श्लोकों की संख्या में बहुत अन्तर है। दामोदर द्वारा संकलित (इकट्ठा किया गया) पहला संस्करण 581 पद्यों (कविताओं) का है, जबकि मधुसूदन द्वारा संकलित दूसरा संस्करण 730 पद्यों का है। दोनों संस्करणों में केवल 300 पद्य ही एक समान हैं।

स्पष्ट है कि वाचिक परम्परा में सदियों तक प्रचलित रहने तथा अलग-अलग स्थानों पर प्रस्तुत किए जाने के कारण हनुमन्नाटक के विभिन्न रूपान्तर (बदले हुए रूप) चलन में आए। अपने कथा गायन और महाकाव्य वाले रूप के कारण हनुमन्नाटक को महानाटक भी कहा जाता रहा है। प्राचीन होने के कारण भी इसके आकार में विस्तार होता रहा होगा। मैक्समूलर ने महानाटक को संस्कृत नाटक का प्रारम्भिक रूप माना है।

इस नाटक की प्राचीनता इस तथ्य से भी प्रमाणित होती है कि परम्परागत मान्यता के अनुसार इसके रचनाकार हनुमान कहे गए हैं। प्राचीन कथा ग्रन्थों में यह अनुश्रुति (सुनी-सुनाई बात) भी मिलती है कि यह नाटक नष्ट हो गया था और महाराज भोज को समुद्र के पत्थरों पर खुदा हुआ मिला था। वास्तव में हनुमन्नाटक वाचिक परम्परा में प्रचलित लीला नाटक का सबसे प्राचीन रूप कहा जा सकता है।

वैदिक काव्य परम्परा मूल रूप से वाचिक (बोलने और सुनने की) परम्परा ही थी, जिसकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति यज्ञ के मंच पर होती थी। काव्यों या मन्त्रों के प्रयोग के साथ यज्ञ के मंच पर आख्यान (बड़ी कथा), उपाख्यान (छोटी कथा), नृत्य, गीत और नाटक का भी विकास हुआ। अथर्ववेद बताता है कि चार वैदिक संहिताओं के साथ पुराण भी यज्ञ से उत्पन्न हुए।

अश्वमेध यज्ञ में पारिप्लव आख्यान (घूम-घूम कर सुनाई जाने वाली कथाएं) कहे जाते थे। रामकरण शर्मा का अनुमान है कि गुरु-शिष्य परम्परा या वक्ता-श्रोता की परम्परा में निरन्तरता बने रहने के कारण इनका नाम पारिप्लव आख्यान पड़ा होगा। अश्वमेध यज्ञ 1 वर्ष तक चलता था। इस अवधि में प्रत्येक 10 दिन में पूरे होने वाले और फिर से दोहराए जाने वाले आख्यान

प्रस्तुत किए जाते थे। अश्वमेध यज्ञ के 360 दिनों में इस प्रकार 36 आख्यान प्रस्तुत किए जाते थे।

इस प्रकार कथाओं की परम्परा वैदिक काव्य तथा यज्ञ से निकली। यज्ञ का पूरा स्वरूप अभिनयात्मक (नाटक जैसा) था। जो कथाएं और उप-कथाएं यज्ञ के मंच पर चलती थीं, उनके साथ गायन, वादन तथा अभिनय स्वाभाविक रूप से जुड़े रहते थे। इन कथाओं को प्रस्तुत करने का कार्य सूत करते थे। यजुर्वेद के 30वें अध्याय में यज्ञ में बुलाए जाने वाले लोगों की सूची दी गई है। उसमें आरम्भ में ही उल्लेख है कि नृत्य के लिए सूत और गीत के लिए शैलूष (गायक-अभिनेता) को बुलाया जाता था।

इन सूतों में से ही कुछ ने कथाओं और उप-कथाओं को यज्ञ तथा अन्य अवसरों पर प्रस्तुत करने का कार्य सम्भाला। सूत जाति के लोग विभिन्न कलाओं में निपुण (कुशल) होते थे। वे वास्तुविद्या (भवन निर्माण कला) में भी कुशल होते थे और रथ बनाने का कार्य भी करते थे। यज्ञ के अनुष्ठान में यज्ञवेदी बनाने के लिए भी उन्हें बुलाया जाता था। यज्ञवेदी की नाप के लिए हाथ में सूत्र (धागा या नापने की डोरी) रखने के कारण उन्हें सूत्रधार कहा गया। महाभारत के आदिपर्व में जनमेजय के नागयज्ञ का वर्णन है। इसमें यज्ञवेदी बनाने के लिए जो सूत्रधार बुलाया गया था, उसके लिए कहा गया है कि वह बुद्धिमान स्थपति (शिल्पकार या वास्तुकार), वास्तुविद्या का ज्ञाता, सूत्रधार, सूत और पौराणिक (पुराणों का ज्ञाता) था।

यहाँ एक ही सूत को स्थपति, वास्तुविद्या का ज्ञाता, सूत्रधार, सूत तथा पौराणिक कहा गया है। रोमहर्षण तथा उग्रश्रवा जैसे सूत महाभारत और पुराणों को लोगों को सुनाते आए हैं। इसलिए समाज में उनका स्थान ऋषियों से कम नहीं माना गया। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था की दृष्टि से विशिष्ट स्थान रखने वाले सूतों ने कथाओं की हमारी महान सांस्कृतिक विरासत और कला की धरोहर को सदियों तक वाचिक (मौखिक) परम्परा में सुरक्षित रखा और आगे बढ़ाया।

ऊपर अश्वमेध आदि यज्ञों में प्रस्तुत किए जाने वाले आख्यानों की चर्चा आई है। इन आख्यानों का सीधा सम्बन्ध हमारी रंगमंच की परम्परा से जुड़ता है। महाभारत जैसे विशाल ग्रन्थों को सूत जाति के लोग ऋषियों या आम जनता के सामने प्रस्तुत करते थे। इन ग्रन्थों में बीच-बीच में प्रसंग के अनुसार व्याख्यान (विस्तार से विवरण) जुड़ते जाते थे। महाभारत में नल-दमयन्ती की कथा (नलोपाख्यान) और सावित्री की कथा (सावित्र्युपाख्यान) इसी प्रकार की उप-कथाएं हैं।

उप-कथाओं की यह सम्पदा बढ़ती गई। बाद में इन्हीं कथाओं को केवल पाठ के लिए ही नहीं, बल्कि अभिनय और गायन के साथ जोड़कर प्रस्तुत किया जाने लगा। भोज ने अपने 'श्रृंगार प्रकाश' में उपाख्यान (छोटी कथा) और आख्यान (बड़ी कथा) को परिभाषित करते हुए यही विवरण दिया है। वे कहते हैं कि दूसरों को समझाने के लिए जो कथा बीच में कही जाती है, वह उपाख्यान है। जब इसी कथा को अभिनय, पाठ और गायन के साथ एक ही ग्रन्थिक (कथावाचक) भरी सभा में सुनाता है, तो वह आख्यान बन जाता है। इस प्रकार पुराणवाचक या कथा प्रस्तुत करने वाले सूत आदि का सीधा सम्बन्ध नाटक की वाचिक (मौखिक) परम्परा से जुड़ता है।

लेखक: डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी